International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493; Impact Factor: RJIF 5.46
Received: 06-05-2020; Accepted: 19-05-2020; Published: 07-06-2020
Volume 2; Issue 2; 2020; Page No. 19-20

सभ्य समाज के निर्माण में शिक्षा की भूमिका

अशोक कुमार
सहायक प्राध्यापक राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखंड, भारत

सारांश
शिक्षा और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही गहरा है। वस्तुतः किसी भी समाज की संरचना, आवश्यकतायें और उसमें उपलब्ध अलग–अलग तरह के स्त्रोत ही उस समाज की शिक्षा की नीति की आधारभूमि निर्धारित करते हैं। कहा भी जाता है कि शिक्षा का स्वरूप वैसा ही होता है जैसा हमारा समाज है और जैसा समाज हम बनाना चाहते हैं। शिक्षा के सामाजिक आधार का अर्थ यह है कि शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और आदर्शों के आधार पर की जानी चाहिए। शिक्षा के द्वारा बालकों में ऐसे सामाजिक गुणों को विकसित किया जाना चाहिए जिससे वे अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें, अधिकारों का उपभोग कर सकें और समाज तथा देश के योग्य, कुशल, जागरूक और समर्पित नागरिक बन सकें। शिक्षा के द्वारा उनमें समाज के साथ अनुकूलन करने की क्षमता विकसित की जानी चाहिए। शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण का आधार उस समाज का जीवन दर्शन, समाज की संरचना और उसकी धार्मिक,, राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति होनी चाहिए। इसी प्रकार पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं को सम्मिलित करना चाहिए जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हों, जो बालकों में सामाजिकता की भावना तथा सामाजिक गुणों का विकास करें और जो व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करें।

मुख्य शब्दः शिक्षा, समाज

प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति ओर समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्तियों के अभाव में समाज का कोई महत्व नहीं है और समाज के अभाव में व्यक्ति जिन्दा नहीं रह सकता, अपना विकास नहीं कर सकता। समाज एक मूर्त संकल्पना है जिसका भवन व्यक्ति की नींव पर निर्मित होता है। प्राचीन काल से ही व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर विचार किया जाता रहा है। प्लेटो ;चसंजवद्ध ने कहा था कि व्यक्ति ठीस उसी प्रकार से व्यवहार करता है जिस प्रकार से समाज उसे व्यवहार करना सिखाता है। व्यक्ति का व्यवहार उस समाज की उपज है जिसमें वह जन्म लेता है और पलता है। अरस्तू ; ।तपेजवजसमद्ध ने कहा था कि कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण संसार को अपना कहने से इंकार कर देगा, यदि उसे यह पता चल जाय कि उसे संसर में अकेला रहना होगा। व्यक्ति के सामाजिक या सामुदायिक जीवन के महत्व पर बल देते हुए उसने यह भी कहा था कि वह व्यक्ति जो एक सामान्य जीवन व्यतीत करने में असमर्थ है अर्थात् जो दूसरों के साथ मिल–जुलकर नहीं रह सकता, वह या तो मनुष्यता के निम्न स्तर पर है या उच्च स्तर पर अर्थात् या तो वह पशु है या भगवान।

शिक्षा : शिक्षा एक ऐसी सामाजिक तथा गतिशील प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है एवं सामाजि वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बनाती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराते हुए उसके विचार तथा व्यवहार में समाज हेतु कल्याणकारी परिवर्तन लाती है। शिक्षा और जीवन अन्योन्याश्रित है। शिक्षा जीवन है और जीवन शिक्षा है। शिक्षा को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता।

समाज (Society)

साधारण अर्थ में समाज का तात्पर्य व्यक्तियों के समूह के लिए कहा जाता है। लेकिन समाजशास्त्रीय अर्थों में व्यक्तियो के बीच जो सामाजिक संबंध पाए जाते हैं, उसी को समाज कहते है। समाज मुख्यतः अमूर्त होता है। लेकिन कभी–कभी हम व्यक्तियों के समूह को भी समाज कहते हैं, जैसे ब्रह्म समाज। तब इसे हम समाज न कहकर एक समाज कहते हैं। यह एक उस समाज का नामकरण है जैसे ब्रह्म समाज में ब्राह्म। यह मूर्त होता है।

समाज मूलतः प्रघटना ने होकर प्रक्रिया को ही व्यक्त करता है। मशीन द्वारा उत्पादित वस्तुएं मशीन के नष्ट हो जाने के बाद भी बनी रहती हैं, लेकिन समाज का निर्माण करने वाली प्रक्रिया के लुप्त होते ही समाज भी लुप्त हो जाता है। इसीलिए मैकाइवर एवम् पेज ने कहा है कि "समाज केवल कालक्रम में ही रहता है।" ; Society exists only in a time sequence)

शिक्षा के कार्य

मानव की जरूरतों को पूरा करने हेतु शिक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा का महत्त्व ही उसके कार्य हैं शिक्षा व्यक्ति के प्रत्येक पहलू का विकास कर, उसका चारित्रिक निर्माण करती है अर्थात् व्यक्ति को मानवता का पाठ पढ़ाती है। शिक्षा के महत्त्व की दृष्टि से निम्न कार्य हैं–

(क) शिक्षा के व्यक्ति सम्बन्धी कार्य

शिक्षा के व्यक्ति से सम्बन्धित कार्य निम्न हैं

1. मानवीय गुणों का विकास – शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को घृणा, द्वेष, क्रोध तथा लालच, आदि से छुटकारा मिल जाता है, इससे उसमें सद्भावना, प्रेम, सहकारिता, दया, आदि का विकास होता है।

2. नैतिक उत्थान – शिक्षा द्वारा व्यक्ति के चरित्र को उच्च स्थान प्रदान किया जाता है। शिक्षित व्यक्ति अच्छे–बुरे कार्यों में आसानी से भेद कर लेता है, इससे वह बुरी प्रवृत्तियों से बचने के साथ–ही–साथ दूसरों को भी ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है।
3. अन्तर्निहित शक्तियों का विकास – शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का समुचित विकास करती है जिससे वह कल्पना, तर्क या जिज्ञासा द्वारा नवीन योगदान दे सके। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति का पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।
4. व्यक्तियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का उचित विकास – शिक्षा द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा संवेगात्मक विकास होता है।
5. भावी जीवन के लिए तैयारी – शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके, उसे हर क्षेत्र में सक्षम बनाती है। इससे व्यक्ति का व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक जीवन सुखमय एवं आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है।

शिक्षा के समाज सम्बन्धी कार्य

(Society Related Function Of Education)

शिक्षा के समाज से सम्बन्धित कार्य निम्न हैं–

1. शिक्षा द्वारा सामाजिक भावना का विकास – व्यक्ति को समाज से पृथक् नहीं किया जा सकता है। इसलिए उसमें प्रेम, परोपकार, दया, भाईचारे की भावना होनी चाहिए, जैसा कि एच. गार्डन ने कहा है– ''अध्यापक को यह जानना जरूरी है कि वह सामाजिक प्रक्रिया को उन व्यक्तियों को समझाने की दिशा में कार्य करे, जो इसे समझने में असमर्थ हैं।''
2. शिक्षा सामाजिक उन्नति में मददगार – शिक्षा सामाजिक क्रियाओं, तथ्यों का लेखा–जोखा साहित्य के रूप में रखती है। अतः आने वाली पीढ़ी उसकी कमियों को समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न करती है, जिसके कारण मानव से लेकर आधुनिक अवस्था तक की प्रगति रहती है।
3. 3. सामाजिक नियमों का ज्ञान – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बगैर वह एक पल भी जीवित नहीं रह सकता है इसलिए व्यक्ति हेतु जरूरी है कि उसके नियमों की जानकारी रखे, जिससे समाज में उसका सम्मानित स्थान हो। यह शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।
4. 4. प्राचीन साहित्य का ज्ञान – शिक्षा के माध्यम से होने वाला प्राचीन साहित्य का ज्ञान हमें समाज की पिछली तस्वीर से अवगत कराता है कि आज का समाज किस तरह का है ? भूत एवं वर्तमान के आधार पर सुखद भविष्य की कल्पना आसानी से कर सकते हैं।
5. 5. शिक्षा धार्मिक दृष्टिकोण अपनाने में मददगार – समाज में कई वाद–विवाद धर्मों के कारण ही होते हैं। अगर निष्पक्ष भावना से देखा जाए तो कोई भी धर्म दूषित विचारों को स्थान नहीं देता है। उन सभी कार्यों के आदर्शों पर चला जाए तो सभी प्रगति पथ पर ले जाते हैं। अतः शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन इस समस्या को दूर कर सकता है।
6. 6. शिक्षा कुरीतियों के निवारण में मददगार – शिक्षा के माध्यम से आगे आने वाली पीढ़ी को समस्याओं से अवगत कराकर, उसके प्रति क्रान्ति पैदा की जा सकती है; यथा–जाति प्रथा, प्रदेशवा, बाल विवाह, आदि।

शिक्षा का महत्त्व

;प्डच्व्त्ज|छब्म् व्थ् म्क्न्ब्|ज्प्व्छद्ध

शिक्षा के प्राचीन एवं आधुनिक अर्थों से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा ही मानव में मनुष्य तत्त्व का निर्माण करती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी बनता है तथा शिक्षा से मानव राष्ट्र का एक जिम्मेदार नागरिक बनता है। अतः शिक्षा का महत्त्व मानव की सस्कृति एवं सभ्यता के आधार से जुड़ा है। शिक्षा के महत्त्व को हम निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर समझ सकते हैं–

1. शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने पारिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को पूर्ण कर सकता है।
2. बालक के सर्वांगीण विकास; जैसे–शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, संवेगात्मक विकास, आदि में शिक्षा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य इस धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बन जाता ळें
4. शिक्षा, शिक्षार्थी तथा शिक्षक दोनों को ही लाभ पहुँचाती है।
5. शिक्षआ के द्वारा ही एक पीढ़ी के विचार तथा रीति–रिवाज अगली पीढ़ी को संचारित होते हैं।
6. शिक्षा मानव में आत्मविश्वास का संचार करती है। किसी भी कार्य की सफलता में आत्मविश्वास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
7. शिक्षा के ही माध्यम से किसी व्यक्ति में देश–विदेश की गतिविधियों तथा संस्कृति को समझने की प्रवृत्ति जागृति होती है।
8. शिक्षा बालक की प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है।
9. शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र में सम्मान की प्राप्ति करता है।

समाज के प्रमुख तत्व

समाज के निर्माण के तत्व है

1. समाज की आत्मा से मनुष्य का अमूर्त सम्बंध है। समाज एक प्रकार से भावना का आधार लेकर बनता है। व्यक्ति समाज के अवयव के रूप में है। व्यक्तियों के बीच की विविधता समाज में समन्वय के रूप में परिलक्षित होती है।
2. समाज में हम की भावना होती है। इस भावना के अन्तर्गत व्यक्तिगत मैं निहित होता है, और यही सामाजिक बंधन को जन्म देता है। पर समाज के सम्पूर्ण बंधन स्वार्थपूर्ण होते है।
3. सामज में समूह मन व समूह आत्मा होती है।, यह सम्बंध पारस्परिक चेतना से युक्त होती है, समूह मन में यह चेतना होती है और उनके यह व्यवहार में प्रकट होती है।
4. समाज में अपनी सुरक्षा की भावना पायी जाती है, इसके लिये वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है, और समाज अपनी निजता को बनाये रखने के लिये नियम कानून रीति रिवाज संस्कृति व सभ्यता को विकसित व निर्मित करता है।
5. समाज की आर्थिक स्थिति उसके सदस्यों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है तो उनसे आर्थिक स्थिति की विविधता पायी जाती है परन्तु इन सबके बाद भी उनमें एक समाज अधिकार भावना पायी जाती है, कि हम समाज के सदस्य है।

6. समाज के जीवन एवं संस्कृति सभ्यता के कारण व्यक्तियों के आचार–विचार व्यवहार मान्यताओं में एका पायी जाती है। जिसे हम जीवन का सामान्य तरीका के रूप में देख सकते हैं।

7. समाज निश्चित उद्देश्यों को रखकर निर्मित होते है, जिसमें पारस्परिक लाभ, मैत्रीपूर्ण व शान्तिपूर्ण जीवन आदर्शों एवं कार्यों की पूर्ति आदि के रूप् में देखे जा सकते है।
8. समाज में स्थायित्व की भावना होती है। क्योंकि सभी सदस्य क पीढ़यों से उसी समाज के आजीवन रहते हैं, इससे समाज बना रहता है।
9. समाज क समूहों के संगठन होते है उनमें अन्योन्याश्रितता होती है।

समाज के प्रकार

समाज दो प्रकार के होते है।

1. बंद समाजः बंद समाज वह समाज है जो व्यक्तियों को वर्ण, जाति, लिंग भेद आदि के आधर पर विभाजित करता है। जैसे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र काला, गोरा आदि।
2. खुला समाजः खुला समाज वह समाज है जो व्यक्तियों को धन, प्रतिष्ठा, योग्यता के आधार पर विभाजित करता है। जैसे, अमीर, गरीब, डॉक्टर, इंजीनियर इत्यादि।

समाज की विशेषताएं (Characteristics of Society)

1. समाज अमूर्त है– समाज सामाजिक संबंधों को कहते हैं। जो दिखायी नहीं देता है। अतः यह अमूर्त होता है।
2. पारस्परिक जागरूकता– लोगों के बीच संबंध प्रत्यक्ष (आमने–सामने) या अप्रत्यक्ष (जैसे टेलीविजन पर किसी का भाषण सुनकर अनुकरण करना) संपर्क के कारण धीरे–धीरे विकसित होता है इन संबंधों की स्थापना व्यकित द्वारा जागरुकता की दिशा में ही किया जा सकता है।
3. समाज में समानता एवं भिन्नता – समाज में अधिकांश सदस्यों के दृष्टिकोण समान होते हैं, साथ ही वे समाज द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मिल जुलकर कार्य करते हैं, एच. एच. गिडिंग्स ;थ्व भ्ण् ळपककपदहेद्ध ने इसे स्वजातीय चेतना (Consciousness of kind) कहा है।

भिन्नता का तात्पर्य समाज के सदस्यों की रुचियों, योग्यताओं, कार्यों, स्वभाव आदि संबंधी भेद होते हैं। यदि पूरी तरह समानता होती तो चीटियों, मधुमक्खियों जैसे सब सीमित प्रतीत होते है। समान आवश्यकताओं के कारण असमान कार्यों को पूरा करने के लिए एक दूसरे का सहयोग करते है।

4. समाज में सहयोग एवं संघर्ष– सरल समाज से लेकर आधुनिक जटिल समाज तक में सहयोग एवं संघर्ष दोनों पाये जाते हैं। प्रत्येक कार्य या उद्देश्य में सफलता का आधार सहयोग ही है। व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में कुछ लोगों के साथ सहयोग करता है तो वही अन्य लोगों के प्रति उसका दृष्टिकोण असहयोग, संघर्ष, द्वेष का भी होता है। इसीलिए मैकाइवर एवं पेज ने समाज को संघर्ष जनित सहयोग कहा है। (Society is co-operation crossed by conflict).

5. समाज मनुष्यों तक सीमित नहीं– मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जीवों जैसे पशु–पक्षियों में भी कुछ न कुछ संबंध एवं जागरूकता पायी जाती है, भले ही यह अल्पकीन क्यों न हो। क्योंकि संबंधों को ही समाज कहते हैं अतः इनमें भी समाज पाया जाता है। इसीलिए मैकाइवर एवं पेज ने कहा है कि "समाज मनुष्यों तक सीमित नहीं हैस, जहां कहीं जीवन हैं वहां समाज है।" (Society is not confined to man only, where there is life there is society).

समाज के विकास में शिक्षा की भूमिका

(Role of education in development of society)

शिक्षा के द्वारा समाज में विकास होता है। शिक्षा के समुचित आधार के बिना किसी समाज में सामाजिक विकास लाना कठिन हो जाता है। कई विकासोन्मुख देशों में यह देखने में आता है कि वहाँ लगाये गये कीमती और उच्चस्तरीय यन्त्र, कल–कारखाने और अन्य उत्पादन केन्द्र वहाँ पूरा लाभ नहीं दे सके हैं, क्योंकि उनके लिए उपलब्ध होने वाले कार्यकर्ताओं अथवा श्रमिकों में या तो अशिक्षा व्याप्त रहती है अथवा अल्प शिक्षा। अशिक्षा अथवा अल्प शिक्षा के कारण उच्चस्तरीय यन्त्र लगाने अथवा व्यवस्था के संचालन में आवश्यक सावधानियाँ, नियमों अथवा सूझ–बूझ से काम लेने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः उत्पादन की दर एवं कार्यक्षमता कम हो जाने के कारण अपेक्षित सामाजिक विकास नहीं हो पाता है।

हमारी शिक्षा संस्थाओं के भीतर और बाहर ऐसे व्यक्तियों की भरमार है जो किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते। परिवर्तन का ही दूसरा नाम विकास है, यदि परिवर्तन धनात्मक दिशा अर्थात् उन्नति की दिशा में हो। शोषित व दलित वर्ग भी अपनी वर्तमान परिस्थितियों में ही सन्तुष्ट अनुभव करते हैं। उच्चस्तरीय व्यक्ति, आर्थिक दृष्टि से समृद्ध व्यक्ति भी परिवर्तन इसलिए नहीं चाहते हैं कि उनके निजी स्वार्थों की पूर्ति नहीं होगी।

हमारे समाज में प्रभावी वर्ग अपने अन्तरमन से नहीं चाहते हैं कि वास्तव में कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन देश में हो जिसमें उनका प्रभाव कम जाए या उनके स्वार्थों की पूर्ति में लेस मात्र भी कमी आ जाए। यही कारण है कि शैक्षिक अवसरों की क्षमता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, प्रजातन्त्र, समान स्कूल पद्धति, आदि के नारे तो लगाये जाते हैं लेकिन वास्तव में जो कुछ होता है उसके ठीक विरूद्ध हि है। परम्परागत सामाजिक नियन्त्रण शिक्षा व्यवस्था को परम्परागत ही बने रहने को बाध्य करते हैं। उनमें जैसा समाजीकरण प्रचलित है वह व्यक्तियों में गत्यात्मक एवं सार्वभौमिकता के गुणों का विकास नहीं होने देता तथा परम्परावादी व्यवस्था पर ही अत्यधिक बल देता हैं जिसके कारण शिक्षा सामाजिक विघटन से ग्रस्त हो रही है तथा सामाजिक परिवर्तन विकास लाने में असमर्थ बनती जा रही है।

निष्कर्षः

निष्कर्षताः स्पष्ट होता है कि शिक्षा का महत्त्व प्रत्येक देश, काल तथा परिस्थितियों में समान रूप से होता है। शिक्षा ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने में सहायक सिद्ध होती है। शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के समान होता है। अतः शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार शिक्षा का सामाजिक आधार इस बात पर बल देता है कि शिक्षा का आधार समाज हेतु शिक्षा के द्वारा बालक का सर्वतोमुखी विकास हो जिससे समाज का भी उत्तरोत्तर विकास हो सके। यद्यपि शिक्षा सामाजिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण साधन या अभिकर्ता बन सकती है यथापि भारतीय परिस्थितियों में यह अनेक जटिल कारणों के फलस्वरूप ऐसा बनाने में सफल नहीं हो पा रही है।

सन्दर्भ सूची

1. अग्रवाल, जे.सी. (2006). शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्ध, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली।

2. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अल्का (2009). शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन,
3. पाठक, पी0डी0 (2008). शिक्षा मनोविज्ञान, विकास की अवस्थाएँ, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स,
4. पाठक, पी0डी0 (2012), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. पाठक, पी0डी0 (2020). बाल्यावस्था एवं बड़ा होना, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2 पृ0 28
6. लाल, रमन बिहारी (2010), षिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ